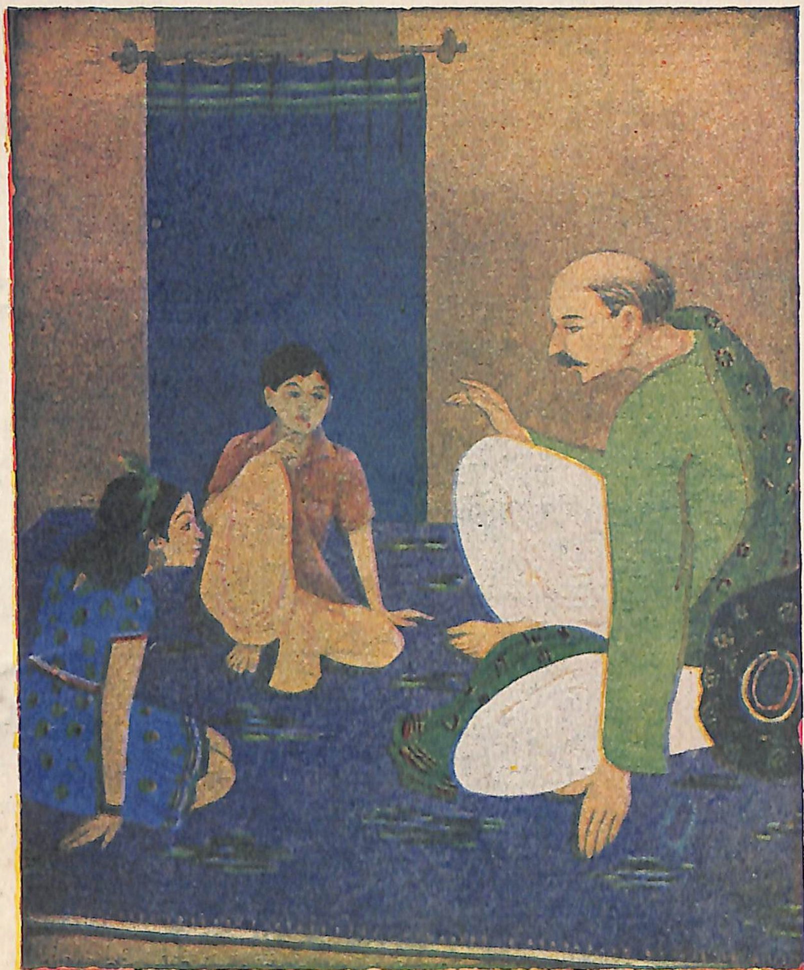
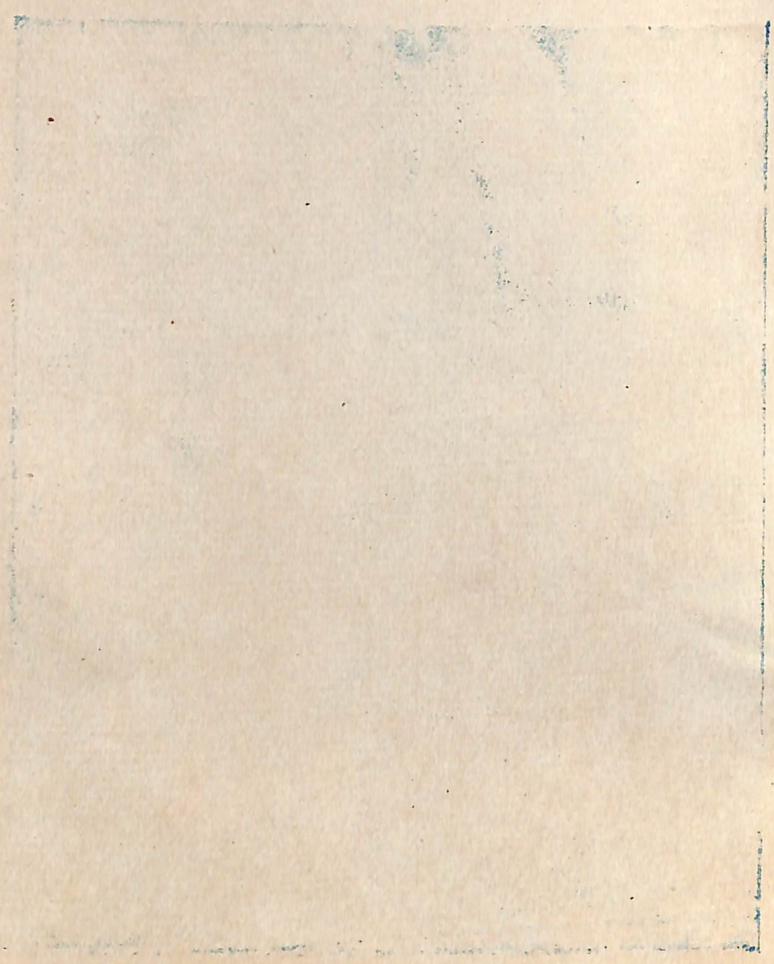
बाल-हितोपदेश





नवयुग 'बाल-साहित्य' माला

बाल-हितोपदेश

मूल 'हितोपदेश' से

(दो नाटकीय दृश्यों के साथ)

लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, एम० ए०

द्वारा

बच्चों के लिए सरल तथा संक्षिप्त करके

सम्पादित



प्रकाशक

(राजा) रामकुमार-प्रेस, बुकडिपो,

उत्तराधिकारी—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

सातवीं बार]   १९६२   [मूल्य ।=)

इस पुस्तक के सम्बन्ध में

'हितोपदेश' संस्कृत की एक प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें वे कहानियाँ हैं जो पंडित विष्णु शर्मा ने पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के पुत्रों को शिक्षा देने के लिए सुनाई थीं। मनोरंजन के साथ ही साथ प्रत्येक कहानी से नीति की शिक्षा भी मिलती है।

संसार के बाल-साहित्य में इन कहानियों का बड़ा आदर है और इनका अनुवाद संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में हो चुका है। उन्हीं कहानियों में से बारह इस पुस्तक में बच्चों के लिए सरल तथा संक्षिप्त करके रक्खी गई हैं।

दो कहानियों को बच्चों के खेलने योग्य नाटक के रूप में रक्खा गया है, क्योंकि बच्चों में अभिनय करने की भावना प्रबल होती है। यदि बच्चे और भी कहानियों को नाटक का रूप देकर खेलना चाहें तो उनको ऐसा करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। बच्चों की शिक्षा में अभिनय का श्रेष्ठ स्थान है।

———

विषय-सूची

बाल-हितोपदेश

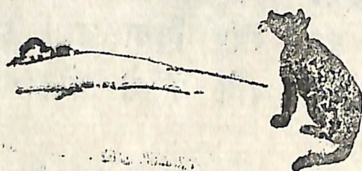
भगतिन बिल्ली

गङ्गाजी के किनारे किसी वन में एक बहुत पुराना बरगद का वृक्ष था। उस पर अनेक पक्षी रहते थे। एक बूढ़ा और अन्धा गिद्ध भी उसी वृक्ष पर रहता था। बुढ़ापे के कारण गिद्ध कुछ काम-काज न कर सकता था। अधिक उड़ा भी न जाता था। दूसरे पक्षियों ने दया करके उसे अपने बच्चों की रखवाली करने का काम सौंप दिया था। इसके बदले वे सब उसे अपने खाने में से थोड़ा-थोड़ा दे दिया करते थे।

एक दिन एक बिल्ली उस पेड़ के पास जा पहुँची। पक्षियों के बच्चों को देखकर उस बिल्ली के मुँह में पानी भर आया। तुरन्त ही वह उन बच्चों को हड़पने का उपाय सोचने लगी। पक्षियों के बच्चे बिल्ली को देखकर रोने-चिल्लाने लगे। उनको रोते देखकर गिद्ध बोला—कौन है बच्चो, तुम क्यों रो रहे हो? गिद्ध की आवाज सुनते ही बिल्ली के होश उड़ गये। परन्तु

उसने तुरन्त ही उस सीधे-सादे गिद्ध को धोखा देने का उपाय सोच लिया। गिद्ध के सामने माथा झुका कर बोली—चाचाजी नमस्कार।





गिद्ध बोला—हत्यारी, मुझे तेरा नमस्कार नहीं चाहिए। यदि अपने प्राणों की खैर चाहती है तो तुरन्त ही यहाँ से कूच कर जा। बिल्ली इतने पर भी न घबराई और बोली—चाचाजी, मैं तो समझती थी कि आप मेरा बड़ा सत्कार करेंगे, परन्तु आप तो मुझे देखते ही खाने को दौड़े। मैं आपकी भतीजी हूँ, कम से कम मेरे आने का कारण तो पूछिए।

गिद्ध बिल्ली की मीठी बातों में आ गया; बोला—अच्छा, जो कुछ कहना है जल्दी कह डाल। बिल्ली बोली—चाचाजी, मैंने गंगा के तट पर आपकी भक्ति और तप की प्रशंसा सुनी। उसे सुनकर मेरे मन में भी बुढ़ापे में राम नाम लेने की इच्छा पैदा हुई। तभी से मैंने मांस खाना छोड़ दिया है। फलों पर ही अपना जीवन बिताती हूँ। सारा दिन भगवान् के जप में ही बीत जाता है। आज अभी भजन से उठकर आप जैसे महात्मा के दर्शन करने चली आई। परन्तु आप तो भले महात्मा निकले कि मेरे प्राण लेने के लिये तैयार हो गये।

अपनी भक्ति की प्रशंसा सुनकर और बिल्ली की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर गिद्ध का सारा क्रोध शान्त हो गया। गिद्ध बोला—बेटी रानी, वैसे तो तुमसे मेरी कोई शत्रुता नहीं है, परन्तु इन पक्षियों के बच्चों के कारण मैंने तुम्हें यहाँ आने से रोका।

बिल्ली गिद्ध को फुसलाते हुए बोली—महाराज, मैंने तो पहले ही कह दिया है कि मैंने मांस खाना छोड़ दिया है। मुझे तो सब पक्षी अपने प्राणों से भी प्यारे हैं। मैं तो उलटी उनकी रक्षा करती हूँ। इसलिए आप इस बात का विचार भी न करें। बस, अब तो मेरी यही इच्छा है कि आपके पास रहकर आपकी

सेवा करूँ। भोला-भाला गिद्ध उस बिल्ली की बातों में आ गया और उसने उसे उसी पेड़ के एक कोटर में रहने की आज्ञा दे दी। बिल्ली अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न हुई और धीरे-धीरे पक्षियों के बच्चों को चट करने लगी और उनकी हड्डियाँ गिद्ध के कोटर में डाल देती।

आए दिन अपने बच्चों का खोना देखकर पक्षियों ने एक दिन गिद्ध के कोटर की तलाशी कर डाली। बच्चों की हड्डियों को पाकर उन्हें पूरा विश्वास



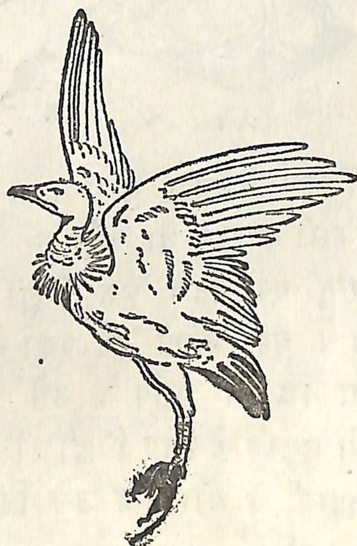
हो गया कि इसी दुष्ट गिद्ध ने हमारे बच्चे खाए हैं। तुरन्त उन सबों ने मिलकर उसे मार डाला।

प्यारे बालको! बिना सोचे-समझे मित्र बनाने पर इसी प्रकार से दुख उठाना पड़ता है। इसलिये खूब सोच-समझकर मित्रता करनी चाहिए।

———

ऋषि और चूहा

पुराने समय में एक बड़े दयालु ऋषि थे। उनसे किसी प्राणी का दुख न देखा जाता था। एक दिन उन्होंने देखा कि एक गिद्ध एक चूहे को पंजे में दबाए उड़ा जा रहा है। ऋषि को उस दुखी चूहे पर दया



आ गई और उन्होंने उसे गिद्ध के पंजे से छुड़ा दिया। चूहा अपने प्राणों की रक्षा करनेवाले ऋषि के ही पास

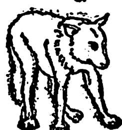
रहने लगा—ऋषि भी उस चूहे पर प्रेम करते थे और चावल, गेहूँ आदि अन्न उसे खिलाया करते थे।



थोड़े ही दिन में चूहा मोटा-ताजा होने लगा। अब उसे न किसी का डर था और न खाने-पीने की चिन्ता। परन्तु एक दिन एक बिल्ली उसके ऊपर झपट ही पड़ी। चूहा प्राणों की रक्षा के लिए ऋषि की गोद में जा छिपा। ऋषि ने उसे सदा के लिए बिल्ली के डर से छुड़ाने के लिए बिल्ली ही बना दिया। वे ऋषि बड़े तपस्वी थे और उन्हें उसे बिल्ली बनाने में कुछ कठिनाई न हुई।

परन्तु डर अब भी दूर नहीं हुआ। बिल्ली भी कुत्तों से डरती थी। इस डर से दूर करने के लिए ऋषि ने



अपने तप के बल से उसे कुत्ता ही बना दिया। कुछ भेड़ियों ने एक दिन ताना देते हुए उस कुत्ते से कहा—बिल्ली से कुत्ता तो तुम जरूर बन गए, परन्तु हमसे जान बचाना कठिन है। अच्छा! बच्चाजी, देखेंगे किसी दिन तुमको भी। इस पर तो कुत्ता बहुत घबराया। परन्तु ऋषि ने उसे तुरन्त ही भेड़िया बना दिया। भेड़िया बनते ही उसका सारा डर मिट गया।

उसके भेड़िया बनने ही ऋषि के सारे चेले उससे डरने लगे। भेड़िया भी अब अकड़-अकड़कर इधर-उधर घूमता और ऋषि की तनिक भी परवा नहीं करता था। एक दिन चेलों ने ऋषि से कहा—महाराज, आपने इस चूहे को भेड़िया बनाकर बड़ी भूल की है। यह किसी दिन कहीं आपके ही प्राण न ले डाले। भेड़िया भी यह सब सुन रहा था। उसने सोचा कि इस ऋषि के रहते सब लोग उसे चूहा समझते हैं और उसका अनादर करते हैं। इसलिए एक दिन इसे ही मार देना चाहिए। फिर किसी को मेरे चूहा होने का ध्यान भी न रहेगा।

एक दिन ऋषि को अकेला पाकर वह उनके ऊपर झपट पड़ा। ऋषि ने उसे अपनी ओर झपटता देखकर ही फिर अपनी माया का प्रयोग कर डाला और उसे वहीं का वहीं चूहा बना दिया। अब बेचारा चूहा पहले की तरह ही फिर पृथ्वी पर रेंगने लगा। ऋषि ने मन में विचार किया कि नीच आदमी बहुत ऊँचा पद पाने पर अपने रक्षक का ही घातक बन जाता है।

लोभी पथिक

एक समय दक्षिण दिशा के वन में एक बूढ़ा शेर स्नान किया हुआ सरोवर के तट पर बैठा हाथ में कुशा लिए कह रहा था—अरे राहगीरो ! यह सोने का कंकण लिए जाओ। उसकी बात सुनकर भी भय के मारे कोई उसके पास नहीं जाता था।

कुछ देर बाद एक लोभी राहगीर ने सोचा—भाग्य से यह असम्भव भी सम्भव हो सकता है। परन्तु जीवन का जिसमें सन्देह हो ऐसे कार्य में एकाएक नहीं कूदना चाहिए।

"जिस पात्र में विष लगा हुआ है उसमें यदि अमृत भी रख दिया जाय तो भी वह मृत्यु का कारण बन जाता है।"

यह सोचकर उसने सामने आकर कहा—तुम्हारा कंकण कहाँ है ? शेर ने हाथ फैलाकर कंकण दिखा दिया। बटोही ने कहा—तुम जैसे हिंसक जीव पर विश्वास कैसे किया जाय ? शेर बोला—अरे बटोही सुन, पहले अपनी तरुण अवस्था में मैं बड़ा दुराचारी था। अनेक गौओं तथा मनुष्यों का वध करने से मेरे पुत्र मर गये और स्त्री भी मर गई। इस प्रकार मैं वंशहीन हो गया हूँ। तब एक धर्मात्मा ने मुझे उपदेश दिया कि तुम दान-धर्म करो। उसके उपदेशानुसार मैं प्रतिदिन स्नान करता और दान देता हूँ। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मेरे नाखून और दाँत

बेकाम हो गये हैं। इस पर भी क्या मैं विश्वास के योग्य नहीं हूँ ?

मुझे लोभ लेशमात्र भी नहीं है। इसी कारण मैं अपने हाथ में रखे हुए कंकण को किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ। तिस पर भी 'शेर मनुष्य को खाता है' इस कहावत को दूर करना बड़ा कठिन है। क्योंकि संसार के सभी लोग एक दूसरे के पीछे चलनेवाले हैं। इसलिए इस तालाब में नहाकर सोने के कंकण को लो। तब वह ज्यों ही तालाब में उसके वचन पर विश्वास करके घुसा, त्यों ही भारी कीचड़ में फँस गया और भाग न सका। उसे कीचड़ में फँसा हुआ देखकर शेर बोला, अहह ! क्या तुम कीचड़ में फँस गये हो ? इसलिये मैं तुझे उठाता हूँ। ऐसा कहकर धीरे-धीरे पास जाकर शेर ने उसे पकड़ लिया। तब वह बटोही सोचने लगा—"धर्म-शास्त्र अथवा वेद का अध्ययन करता है, इसलिये यह दुरात्मा भला आदमी हो गया है, यह समझना भूल है। क्योंकि स्वभाव ही सबसे बलवान् है, जैसे गायों का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है। सो मैंने ठीक नहीं किया, जो इस मारनेवाले पर विश्वास किया।"

इस प्रकार सोच ही रहा था कि इतने में व्याघ्र उसे मार डाला और खा लिया।

———

ब्राह्मण और ठग

ब्राह्मण—मुझे एक बकरी की बड़ी जरूरत है। चलूँ; मेले से मोल ले आऊँ। (जाता है और एक सुन्दर बकरी मोल लेकर उसे कंधे पर रख के आता है)

(तीन ठग आते हैं)

पहला ठग—देखो मित्र, कैसी सुन्दर बकरी है !

दूसरा ठग—हाँ, है तो मित्र ! इसे ठगने का उपाय करना चाहिए।

तीसरा ठग—अवश्य। यदि यह बकरी हमें मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो।

पहला ठग—मैं यहाँ बैठता हूँ, तुम उधर बैठ जाओ और तुम वहाँ। (सब थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठ जाते हैं)

पहला ठग—(ब्राह्मण से) पंडितजी प्रणाम। महाराज आप ब्राह्मण होकर कुत्ते को कन्धे पर रक्खे हैं।

ब्राह्मण—कुत्ता ? यह कुत्ता नहीं, बकरी है। (चल देता है)

दूसरा ठग—जय रामजी की महाराज। आप इस कुत्ते को क्या करेंगे ?

ब्राह्मण—कुत्ता नहीं, बकरी है। (बकरी को जमीन पर रखकर ध्यान से देखता है और फिर चल देता है)

तीसरा ठग—अरे ! राम-राम पंडितजी ! कहाँ आप और कहाँ यह कुत्ता ! क्या इसे कंधे पर रखना ब्राह्मण के लिए उचित है ?



ब्राह्मण—(बकरी को पटककर) अवश्य ही किसी देवता ने मेरी मति पर पर्दा डाल दिया है, जो मुझे कुत्ता ही बकरी दिखाई देता है। सब कहते हैं कि यह कुत्ता है तो अवश्य ही उनका कहना ठीक है (खाली हाथ चला जाता है)

तीनों ठग—(आकर और बकरी को लेकर) वाह ! वाह ! पंडितजी को कैसा उल्लू बनाया !

(सब प्रसन्न होकर जाते हैं)

———

सिंह और ऊँट

किसी वन के एक भाग में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके तीन सेवक थे—कौआ, बाघ और सियार। एक दिन तीनों वन में घूम रहे थे कि उन्हें एक ऊँट दिखाई पड़ा। तीनों ने उससे पूछा—अपने साथियों से बिछुड़ कर तुम कहाँ से आ रहे हो? ऊँट ने अपनी सब कहानी सुनाई। इसके बाद उसे ले जाकर उन तीनों ने सिंह के हवाले कर दिया। सिंह ने उसे अभय दान देकर और उसका नाम 'चित्रकर्ण' रखकर उसे अपने पास रख लिया।

कुछ दिनों बाद एक दिन सिंह की तबियत ठीक नहीं थी और पानी भी बहुत बरस रहा था। इस कारण उन तीनों सेवकों को भोजन नहीं मिल सका, जिससे वे बौखला उठे। तब उन्होंने सोचा—कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए कि जिससे यह अपने स्वामी चित्रकर्ण को ही मार दे। काँटों को भक्षण करनेवाले इस जीव से हमारा और क्या उपकार हो सकता है?

इस पर व्याघ्र बोला—महाराज ने उसे अभय दान देने की कृपा की है, तब यह कैसे सम्भव हो सकता है?

कौए ने कहा—इस समय भूख से बिलबिलाये हुए महाराज पाप करने पर भी उतारू हो जायँगे।

ऐसा सोचकर वे सब सिंह के पास गये। सिंह ने पूछा—'कुछ खाने को मिला?' उन्होंने उत्तर दिया—बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं मिला। सिंह बोला—तो अब जीवन का क्या उपाय होगा? कौए ने कहा—'अपने समीप के आहार को त्यागने से ही यह सर्वनाश की समस्या आ उपस्थित हुई है।'

सिंह ने पूछा—यहाँ अपने पास कौन सा आहार है?

कौए ने कान में कहा—चित्रकर्ण।

सिंह ने भूमि को छूकर और कान पकड़कर कहा—मैंने उसे अभय दान देकर अपनी शरण में रक्खा है। तब यह कैसे हो सकता है कि मैं उसे मारूँ।

कौए ने कहा—महाराज! आप उसे न मारें बल्कि हम लोग ऐसा उपाय रचेंगे जिससे वह स्वयं अपना शरीर अर्पण कर देगा।

यह सुनकर सिंह चुप रहा। कुछ देर बाद कौए ने कहा—महाराज! बहुत कुछ यत्न करने पर भी आहार नहीं मिल सकता। इस उपास के कारण आप खिन्न हो गये हैं, इसलिये आप हमारा मांस खाइये। सिंह ने कहा—मर जाना अच्छा, लेकिन ऐसे बुरे काम में प्रवृत्त होना ठीक नहीं। तदनन्तर सियार

ने भी वही बात कही। सिंह ने फिर कहा—ऐसा नहीं हो सकता। अब व्याघ्र बोला—आप हमारा मांस खाकर अपने प्राण बचाइये। सिंह बोला—यह भी करना योग्य नहीं है।

इसके अनन्तर यह विश्वास हो जाने पर कि स्वामी किसी को भी मारने के लिए तैयार नहीं हैं, तब चित्रकर्ण ने भी अपना शरीर समर्पण करने की बात कही। ऊँट के इतना कहते ही व्याघ्र ने उसका पेट फाड़कर मार डाला और सब मिलकर खा गये। धूर्तों की बातों में आकर सज्जन लोगों की बुद्धि चञ्चल हो जाती है।

मूर्ख मंडूकराज

किसी ऊजड़ बगीचे में मन्दविष नाम का एक सर्प रहा करता था। वह अधिक बूढ़ा हो जाने के कारण अपने लिए भोजन भी नहीं खोज सकता था। अन्त में वह एक तालाब के किनारे जा पड़ा।

दूर ही से उसे किसी मेंढक ने देखा और पूछा— क्यों भाई ! तुम अपना भोजन क्यों नहीं खोजते ?

साँप बोला—भाई तुम जाओ, अपना काम करो। मुझ अभागे से पूछने-ताछने की क्या आवश्यकता ? इससे मेंढक का कौतूहल और भी बढ़ गया। वह बार-बार यह आग्रह करने लगा कि कुछ तो बताइये ही।

साँप बोला—भाई ! बात यह है कि ब्रह्मपुर में रहने-वाला कौडिन्य नामक किसी ब्राह्मण का बीस वर्ष का लड़का था, जो बड़ा सद्गुण-सम्पन्न था। अभाग्यवश अथवा क्रूर स्वभाव के कारण मैंने उसे काट लिया। उस सुशील नामक अपने पुत्र को मरा देखकर कौडिन्य मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर लोटने लगा। इसके बाद उस शोकाकुल ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया कि आज से तुम मेंढकों की सवारी बनकर रहोगे। उस ब्राह्मण के शाप से आज मैं मेंढकों को सवारी देने के लिए यहाँ आया हूँ।

इसके बाद उस मेंढक ने जाकर जालपाद नामक मेंढकों के राजा से यह बात कही। इस पर मेंढकों का राजा आया और साँप की पीठ पर चढ़ गया। साँप भी उसे पीठ पर बिठाकर विचित्र ढंग से कुछ इधर-उधर चला फिरा। दूसरे दिन फिर मण्डूकराज पीठ पर चढ़ा तो साँप बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ा। इस पर जालपाद नामक मण्डूकराज ने कहा—'आज आप धीरे-धीरे क्यों चल रहे हैं?'

साँप ने उत्तर दिया—महाराज! भोजन न मिलने से मैं चलने में असमर्थ हो गया हूँ। मण्डूकराज ने कहा—मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम मेंढकों को खाओ।

साँप ने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। यह कहकर क्रमशः उसने सब मेंढकों को खा लिया। जब तालाब मेंढकों से खाली हो गया तब उसने मण्डूकराज को भी खा लिया।

'अपना कार्य बनाने के लिए शत्रुओं को भी कन्धे पर ढोवे।'

सच्ची मित्रता

मगधदेश में चम्पकवती नाम का एक बड़ा वन था। उसमें बहुत समय से बड़े प्रेम के साथ एक कौआ और मृग दोनों रहते थे। मोटे-ताजे शरीरवाले अपनी इच्छा के अनुसार घूमते हुए उस हिरन को किसी सियार ने देखा। उसे देख सियार सोचने लगा—"इसके स्वादिष्ठ मांस को मैं कैसे पा सकूँगा। अच्छा, पहिले इसके हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करूँ।"

ऐसा सोचकर वह उसके पास गया और कहने लगा—मित्र! तुम्हारा कुशल तो है? हिरन बोला—'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया—मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का सियार हूँ। इस वन में मैं किसी साथी के विना मुर्दे के समान रहता था। आज तुम जैसे मित्र को पाकर फिर से बन्धुयुक्त होता हुआ इस मनुष्यलोक में प्रविष्ट हो रहा हूँ। अब तो मैं सभी तरह से तुम्हारा अनुचर (सेवक) बनकर रहूँगा।

मृग ने कहा—अच्छी बात है। इसके बाद जब सूर्यास्त हो गया तब वे दोनों मृग के निवास-स्थान पर गये। वहाँ चंपक वृक्ष की टहनी पर सुबुद्धि नाम का कौआ मृग का पुराना मित्र रहता था। उन दोनों को

देखकर कौआ बोला—मित्र चित्रांग ! यह दूसरा कौन है ?

मृग बोला—यह सियार है, मुझसे मित्रता करने की इच्छा से आया है।

कौआ बोला—मित्र ! अचानक आये हुए के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए। जैसा कि कहा है—कुल और शील जिसका ज्ञात न हो, ऐसे व्यक्ति को ठहरने के लिए स्थान नहीं देना चाहिए।

यह सुनकर वह सियार क्रोध में आकर बोला—हिरन के प्रथम मिलन के दिन आपका भी तो कुल और शील ज्ञात नहीं था। फिर किस प्रकार आपके साथ इसकी मित्रता क्रमशः दिन-प्रतिदिन गाढ़ी होती जा रही है। यह अपना है और यह पराया है। यह छोटी बुद्धिवालों की गिनती है। उदार चरित्रवालों को तो सब पृथ्वी ही कुटुम्ब के समान है।

इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या लाभ ? सब एक जगह प्रेम की बातें करते हुए सुख से रहें। कौए ने कहा—ठीक है, ऐसा ही हो। इसके बाद प्रातःकाल होने पर सब अपने-अपने मनमाने देश को चले गये।

एक दिन एकान्त में गीदड़ ने कहा—मित्र हरिण ! यहाँ एक जगह नाज से भरा हुआ खेत है। मैं तुमको आज वहाँ ले जाकर दिखलाऊँगा।

ऐसा करने पर वह मृगपति प्रतिदिन वहाँ जाकर चरने लगा। तब किसान ने यह देखकर जाल लगा दिया। तदनन्तर चरने आया हुआ वह मृग जाल में फँस गया और सोचने लगा, मुझे इस मृत्यु के पाश के समान व्याध के इस जाल से बचानेवाला मित्र के सिवा और कोई नहीं है। अनन्तर गीदड़ वहाँ आया और सोचने लगा—मेरा कपट सफल हुआ और मनोरथ पूर्ण हुआ।

इसके चमड़ा उतारने पर मांस और रुधिर से सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी। हरिण उसको देखकर प्रसन्नता से बोला—मित्र ! मेरे जाल को शीघ्र काटो और जल्दी मुझे बचाओ। वह गीदड़ बार-बार जाल को देखकर सोचने लगा, 'यह बंधन तो दृढ़ है।' और कहने लगा—मित्र ! ये पाश ताँत के बने हुए हैं। और आज रविवार है, इसलिये इन्हें किस प्रकार मैं दाँतों से छूऊँ। मित्र, यदि अपने चित्त में कुछ और न समझो तो सुबह जो तुम कहोगे सो करूँगा। यह कहकर उसके समीप ही अपने को छिपाकर बैठा रहा। शाम को कौए ने हरिण को आया न देखकर इधर-उधर खोजा और उसको इस प्रकार बँधा हुआ देखकर बोला—मित्र ! यह क्या हाल है ?

मृग ने कहा—मित्र के वचनों को न मानने का यह फल है। जो पुरुष अपने हितकारी मित्रों के वचनों को

नहीं सुनता, विपत्ति उसके समीप रहती है और वह मनुष्य अपने शत्रु को आनन्द दिलानेवाला हो जाता है।

कौआ बोला—वह ठग कहाँ है ?

मृग ने कहा—मेरे मांस का इच्छुक यहीं कहीं होगा।

कौआ बोला—मैंने पहले ही कहा था।

फिर कौए ने लम्बी साँस लेकर 'अरे ठग !' नीच कर्म करनेवाले तूने यह क्या किया ?

फिर प्रातःकाल कौवे ने हाथ में डंडा लिए उसी स्थान को आते हुए किसान को देखा। उसको देखकर कौवा बोला—मित्र मृग ! तू अपने को मरे की तरह दिखाकर, पेट को हवा से फुलाकर, टाँगों को जकड़ी सी करके पड़ा रह। जब मैं शब्द करूँ तब तुम उठकर जल्दी से भाग जाना। कौवे ने जैसा कहा, मृग ने वैसा ही किया। तब किसान इस प्रकार हरिण को देखकर प्रसन्न हुआ और प्रसन्नता भरी आँखों से उसको देखकर बोला, 'अरे ! यह तो स्वयं ही मर गया', ऐसा कहकर मृग को बन्धन से छुड़ाकर जाल को समेटने लगा। तब कौवे का शब्द सुनकर मृग शीघ्र उठकर भाग गया। उसको लक्ष्य करके किसान ने डण्डा फेंका, जिससे गीदड़ मर गया।

नीलवर्ण सियार

किसी जंगल में एक गीदड़ रहता था। शहर के आस-पास घूमता हुआ वह एक दिन धोबी के यहाँ नील से भरे हुए नाँद में गिर पड़ा। लेकिन बाद उसमें से उठने में असमर्थ रहा। तब प्रातःकाल अपने को मरा हुआ सा दिखाकर उसमें पड़ा रहा। बर्तन के स्वामी धोबी ने उसे मरा समझकर, उसमें से निकालकर दूर ले जाकर उसे फेंक दिया। वहाँ से उठकर फिर वह भाग गया।

इसके बाद जब जंगल में पहुँचा और अपने को नीला रँगा देखा तो उसने सोचा कि अब मैं उत्तम वर्ण का हो गया हूँ। तब मैं अपनी उन्नति क्यों न कर लूँ।

ऐसा विचारकर, सब सियारों को बुलाकर उसने कहा—"मुझ पर भगवती वनदेवता ने अपने हाथों सब ओषधियों के रस से अभिषेक करके मुझे इस वन का राजा बना दिया है। इसलिये आज से इस वन के सभी पशु मेरी आज्ञानुसार चलें।"

सियारों ने उसके शरीर का एक विशेष रंग देखा तो साष्टांग प्रणाम करके कहा—"जैसी महाराज की आज्ञा।"

इस तरह सभी वनवासियों पर उसका आधिपत्य हो

गया। कुछ काल बीतने पर जब उसे सिंह, व्याघ्र आदि उत्तम श्रेणी के पशु सेवक के रूप में प्राप्त हुए, तब दरबार में अपनी जाति के सियारों को देखकर उसे लज्जा मालूम होने लगी, इसलिये उसने अपमान-पूर्वक सभी सियारों को हटा दिया।

तब सभी सियारों को दुखी देखकर एक वृद्ध सियार ने प्रतिज्ञा की—"दुखी मत हो, इस अज्ञानी ने हमको अपने पास से अलग करके हमारा अपमान किया है। अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे वह नष्ट हो जाय। क्योंकि ये व्याघ्र आदि जीव केवल इसके शरीर का विशेष रंग देखकर धोखे में आ गये हैं और इसको सियार न समझकर वन का राजा समझ बैठे हैं। इसलिए अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे ये सब इसे पहिचान लें। इसके लिए ऐसा करो कि आज शाम को तुम सब मिलकर उसके समीप में ही एक साथ जोर से चिल्लाओ, तब उस आवाज को सुनकर जाति स्वभाव से वह भी चिल्लावेगा।"

उनके ऐसा करने पर वही हुआ। तब शब्द से ही पहिचान कर एक व्याघ्र ने उसे मार डाला।

जो प्राणी अपने पक्ष को त्यागकर पराये पक्ष में जा मिलता है, वह मूर्ख अपने शत्रुओं द्वारा उसी तरह मारा जाता है, जैसे नीलवर्ण गीदड़ मारा गया।

धर्मबुद्धि-पापबुद्धि

राजा विक्रमादित्य के राज्यकाल में रामपुर नामक गाँव में पापबुद्धि नाम का एक किसान रहता था। उसके पड़ोसी का नाम धर्मबुद्धि था। यों तो उसके नाम एक दूसरे से उल्टे थे, परन्तु उनमें बड़ी भारी मित्रता थी। इसका कारण धर्मबुद्धि का सीधापन था।

एक दिन पापबुद्धि धर्मबुद्धि से बोला—भाई धर्मबुद्धि, हम कितने गरीब हैं। हम दोनों को कभी भरपेट खाना नहीं प्राप्त होता है। इसलिए चलो भाई, कहीं परदेश चलें और कुछ दिन घर से बाहर रहकर कुछ धन पैदा करें।



धर्मबुद्धि सीधा-सादा आदमी था। पापबुद्धि की बात उसके मन में समा गई और तुरन्त ही उसके साथ परदेश जाने के लिए राजी हो गया। परदेश में जाकर धर्मबुद्धि को एक अच्छी नौकरी मिल गई। पापबुद्धि ने भी लोगों को धोखा देकर कुछ न कुछ धन कमाना आरम्भ कर दिया। खूब धन इकट्ठा करके कुछ दिन बाद वे अपने देश को लौट पड़े।

रास्ते में पापबुद्धि ने विचार किया कि किसी तरह से धर्मबुद्धि का धन भी हथियाना चाहिए। अपने गाँव से थोड़ी दूर ही एक पेड़ के नीचे पापबुद्धि खड़ा हो गया और बोला—भाई धर्मबुद्धि, हमारे धन को देखकर सारे गाँव में खलबली मच जायगी और किसी दिन कोई न कोई उसे हमारे घर से चुरा ही ले जायगा। इसलिए हम सारा धन इसी पेड़ के नीचे दबा चलें। जैसे-जैसे आवश्यकता होगी, हम यहीं से धन निकालकर ले जाया करेंगे।



धर्मबुद्धि पापबुद्धि की बातों में आ गया। दोनों ने उसी पेड़ के नीचे गढ़ा खोदकर सारा धन दबा दिया। एक दिन पापबुद्धि ने उस गढ़े से सारा धन निकाल लिया और अपने घर में रख लिया।

फिर किसी दिन वह धर्मबुद्धि के पास जाकर बोला—भाई, घर में कुछ रुपयों की जरूरत है। चलो, उस पेड़ के नीचे से कुछ धन ले आएँ। तुम भी अपना हिस्सा ले लेना। दोनों पेड़ के नीचे पहुँचे और गड्ढा खोदने लगे। परन्तु वहाँ अब धन कहाँ से आता।

पापबुद्धि सिर पटक-पटककर रोने लगा और बोला—दुष्ट धर्मबुद्धि, तूने ही यह सारा धन यहाँ से चुराया है। परन्तु धर्मबुद्धि तो निर्दोष था, वह पापबुद्धि की इन सारी चालों को समझ भी न पाया। पापबुद्धि उसे मारता-पीटता राजदरबार में ले पहुँचा। और राजा से धन की चोरी की सारी कथा कह सुनाई।



राजा बोला—पापबुद्धि, हम यह कैसे मानें कि यह धन धर्मबुद्धि ने ही चुराया है। पापबुद्धि बोला—

महाराज, मैं बिलकुल सत्य बोलता हूँ। यदि आप विश्वास न करें तो उस पेड़ से ही पूछ लें। वह पेड़ आपको चोर का ठीक-ठीक पता बता देगा।

राजा को पेड़ की गवाही सुनने की बड़ी लालसा हुई और दरबारी भी उस गवाही को सुनने के लिए बहुत इच्छुक हुए। दूसरे दिन धर्मबुद्धि, पापबुद्धि और राजा तथा राजदरबारी सभी उस पेड़ के नीचे इकट्ठे हो गये। पापबुद्धि पास के एक तालाब में स्नान करके आया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा—हे ग्रामदेवता, आप ही सत्य-सत्य बतायें कि हम दोनों में कौन चोर है? थोड़ी ही देर में पेड़ से आवाज आई—धर्मबुद्धि चोर है।

तुरन्त ही राजा के सिपाहियों ने धर्मबुद्धि को गिरफ्तार कर लिया। परन्तु धर्मबुद्धि बोला—राजन्, मैं भी आम से अपनी सफाई दिलाना चाहता हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी उससे अपनी सफाई दिलाऊँ। राजा ने आज्ञा दे दी। धर्मबुद्धि ने तुरन्त ही उस पेड़ में आग लगा दी। आग लगते ही उसमें से घबराया हुआ एक बुड्ढा मनुष्य निकला। वह पापबुद्धि का बाप था। उसके निकलते ही पापबुद्धि की सारी कलई खुल गई। राजा ने पापबुद्धि को जन्म भर के लिए जेल भेजा और धर्मबुद्धि को छोड़ दिया।

चतुर खरगोश

किसी समय वर्षाऋतु में वर्षा नहीं हुई। इस कारण प्यास से व्याकुल हाथियों के एक झुण्ड ने अपने राजा से कहा—हे नाथ, हमारे जीने का क्या उपाय होगा। अब तो छोटे-छोटे जीवों के नहाने तक को भी जल नहीं रह गया है। हम लोग तो बिना स्नान किये मरे जा रहे हैं। क्या करें ? कहाँ जायँ ? तब हाथियों के राजा ने थोड़ी दूर जा कर उन्हें एक निर्मल सरोवर दिखा दिया।

कुछ दिनों के बाद सरोवर के किनारे पर रहनेवाले खरगोश हाथियों के पैर के दबाव से दबकर मर गये। तब शिलामुखी नाम का खरगोश विचार करने लगा कि यह प्यास से व्याकुल हाथियों का झुण्ड तो यहाँ रोज ही आवेगा उससे हमारा कुल नष्ट हो जायगा।

तब विजय नामक बूढ़े खरगोश ने कहा—तुम लोग चिन्ता मत करो। मैं इसका उपाय करूँगा। इसके बाद वह प्रतिज्ञा करके चला। जाते-जाते उसने सोचा कि हाथियों के झुण्ड के पास जाकर मुझे क्या कहना होगा ? क्योंकि हाथी केवल स्पर्श से भी मार देता है और साँप सूँघने मात्र से ही मार डालता है। पालन करते ही राजा

प्राणों तक को ले लेता है; और हँसते-हँसते दुष्ट मार डालता है।

इसलिए यदि मैं पहाड़ की चोटी पर चढ़कर वहाँ से हाथियों के राजा से बातचीत करूँ तो अच्छा होगा। उसके वैसा करने पर हाथियों के राजा ने कहा—तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?

उसने उत्तर दिया—मैं खरगोश हूँ। भगवान् चन्द्रदेव ने मुझे आपके पास भेजा है। हाथीराज ने कहा—कहिये, क्या कार्य है?

विजय कहने लगा—सिर पर तलवार के झूलते रहने पर दूत मिथ्या भाषण नहीं करता है, क्योंकि उसका वध नहीं होता, इसलिये वह यथार्थ ही कहा करता है।

इसलिये मैं उनकी आज्ञानुसार कहता हूँ। सुनो, भगवान् चन्द्रदेव का कहना है कि इस चन्द्र सरोवर की रक्षा करने के हेतु नियुक्त किये गये खरगोशों को तुमने यहाँ से निकाल दिया, यह बड़ा अनुचित काम किया। मैं (चन्द्रदेव) उन खरगोशों की बहुत दिनों से रक्षा करता रहा हूँ। मेरा 'शशांक' नाम इसी कारण प्रसिद्ध है।

उसके ऐसा कहने पर हाथीराज ने डरकर कहा—हे दूत! हमसे अज्ञानवश ऐसा हुआ है। अब हम ऐसा नहीं करेंगे।

दूत बोला—यदि ऐसी बात है तो उस सरोवर में

क्रोध के मारे काँपते हुए भगवान् चन्द्रमा को प्रणाम करके प्रसन्न कर लो और चले जाओ।

तब रात्रि में वह खरगोश हाथीराज को साथ लेकर सरोवर पर गया और उसमें चंचल तरंगों से हिलते प्रतिबिंब को दिखाकर प्रणाम करवाया। उसने कहा—महाराज, अनजान में इन्होंने यह अपराध किया है, इसलिये इन्हें क्षमा कर दीजिये। अब यह ऐसा नहीं करेंगे।

इतना कहकर सब हाथी उस स्थान को छोड़कर चले गये। 'कहीं-कहीं स्वामी के नाम के बहाने से भी काम बन जाता है।'

वाचाल कछुआ

मगधदेश में फुल्लोत्पल नाम का एक सरोवर था। वहाँ बहुत दिनों से संकट और विकट नाम के दो हंस रहा करते थे। उनका मित्र कम्बुग्रीव नाम का कछुआ भी उसी तालाब में रहता था। एक दिन धीवरों ने वहाँ जाकर सलाह की—'आज रात भर यहाँ रहकर प्रातःकाल मछली, कछुए आदि का शिकार करेंगे।' यह सुनकर कछुए ने हंसों से कहा—'मित्र! तुमने धीवरों की बातें सुनीं? अब मैं क्या करूँ?' हंस बोला—'अभी विचार करो, प्रातःकाल जो उचित होगा सो किया जायगा।' कछुए ने कहा—'नहीं, मुझे तो यहाँ भय लगता है।'

'इसीलिए ऐसा कुछ करो कि जिससे मैं किसी दूसरे तालाब में पहुँच जाऊँ।' हंस बोला—'अस्तु, पानी में पहुँच जाओगे तब तो ठीक ही होगा, लेकिन भूमि पर चलते समय कैसे बचोगे?' कछुए ने कहा—'जिस उपाय से मैं तुम्हारे साथ आकाशमार्ग से जा सकूँ, ऐसा यत्न करो।' हंसों ने कहा—'यह कैसे संभव हो सकता है?' कछुआ बोला—'तुम दोनों एक लकड़ी को अपनी-अपनी चोंच से पकड़कर उड़ो, मैं बीच में उस

लकड़ी को पकड़कर लटका हुआ तुम्हारे पंखों की सहायता से मजे में चला चलूँगा।' हंस बोले—'उपाय तो ठीक है, किन्तु बुद्धिमान् का कर्तव्य है कि वह उपाय के साथ-साथ विनाश से बचने का भी मार्ग सोच ले।'

'हम दोनों जब तुम्हें ले चलेंगे, तब लोग कुछ न कुछ अवश्य कहेंगे। वह सुनकर यदि तुम उनको उत्तर देने लगोगे तो गिरकर मर जाओगे। इसलिये तुम यहीं रहो।' कछुए ने कहा—'क्या मैं मूर्ख हूँ? मैं कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा और न कुछ बोलूँगा ही।' अधिक कहने पर दोनों हंस उसे लकड़ी में लटकाकर चले।

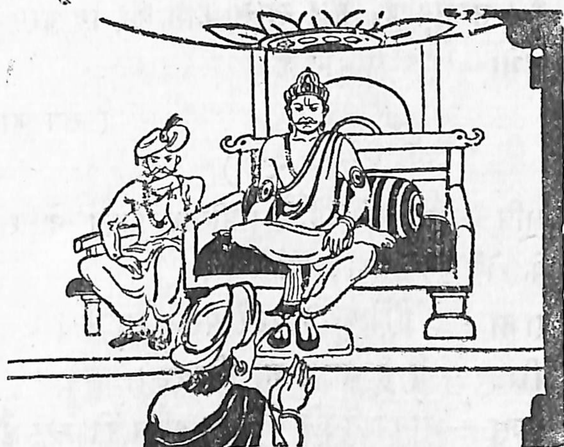
कछुए को देखकर सब ग्वाले उसके पीछे दौड़े और तरह-तरह की बातें कहने लगे। कोई कहता था—'यदि यह कछुआ गिर पड़े, तो अभी हम इसे पकाकर खा लें।' दूसरा कहता—'यहीं भूजकर खाने के योग्य है।' कोई कहता था—नहीं जी, इसे घर ले जाकर खाना चाहिए। उनकी बातें सुनकर कछुए को गुस्सा आ गया और पहिली बातें भूलकर बोल उठा—'तुम लोग खाक खाओगे।' इतना बोलते ही वह गिर पड़ा और ग्वालों ने उसे मार डाला।

स्वामिभक्त वीरवर

राजा की सभा। राजा, मंत्री आदि बैठे हैं।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—(प्रणाम करके) महाराज, द्वार पर एक आदमी आया है। अन्दर आना चाहता है, आज्ञा हो तो आने दूँ।



राजा—अच्छी बात है, आने दो।

(द्वारपाल आता है। वीरवर आकर प्रणाम करता है)

वीरवर—महाराज की जय हो!

राजा—प्रसन्न रहो। कहो भाई, मेरे पास आने का क्या प्रयोजन है?

वीरवर—महाराज, नौकरी की तलाश में आया हूँ।

राजा—क्या तनख्वाह लोगे ?

वीरवर—पाँच सौ रुपये रोजाना।

राजा—यह तो बहुत है। काम क्या करोगे ?

वीरवर—महाराज, पहरा दिया करूँगा।

राजा—(आश्चर्य से) पहरेदारी का काम और पाँच सौ रुपये रोजाना की तनख्वाह !

मंत्री—रख लीजिए, महाराज ! आदमी सच्चा मालूम होता है। सम्भव है, कोई खास काम कर दिखाए।

राजा—अच्छी बात है।

(सब जाते हैं)

(२)

रात्रि। राजा सो रहे हैं। वीरवर पहरा दे रहा है। किसी के रोने की आवाज आती है।

राजा—(चौंककर) पहरे पर कौन है ?

वीरवर—मैं हूँ महाराज, वीरवर।

राजा—जाकर देखो तो यह कौन रो रहा है ?

वीरवर—जो आज्ञा। अभी देखकर आता हूँ, महाराज। (जाता है। राजा भी चुपके से पीछे-पीछे आकर सब बातें सुनता है)

(एक गहनों से लदी हुई सुन्दरी फूट-फूटकर रो रही है)

वीरवर—तुम कौन हो ?

स्त्री—मैं इस राज्य की लक्ष्मी हूँ।

वीरवर—फिर रोती क्यों हो ?

स्त्री—मेरे रोने का कारण न सुनो। तुम्हें दुःख होगा।

वीरवर—नहीं, कहो तो क्या हुआ ? तुम्हें किसने सताया है ?



स्त्री—मुझे सताया किसी ने नहीं है। परसों इस राजा की मृत्यु हो जायगी। इसीलिये मैं रोती हूँ।

वीरवर—लक्ष्मी ! राजा के बचने का कोई उपाय भी है?

स्त्री—है, परन्तु बड़ा कठिन। उसे करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता।

वीरवर—कहो तो; संभव है, मैं कर सकूँ।

लक्ष्मी—तो सुनो। अगर कोई आदमी नगर के

बाहरवाले मन्दिर की देवी-माता पर अपने बेटे का बलिदान कर दे तो राजा के प्राण बच सकते हैं।

(लक्ष्मी जाती है। वीरवर घर आता है)

(३)

वीरवर का घर

वीरवर की स्त्री—स्वामी, आज आप इस समय कैसे आये ? आप कुछ चिन्तित से भी दिखाई देते हैं। क्या मैं आपकी चिन्ता का कारण जान सकती हूँ।

वीरवर—प्रिये, मुझे राजलक्ष्मी ने बताया है कि परसों हमारे स्वामी की मृत्यु हो जायगी। यदि कोई आदमी देवी-माता पर अपने पुत्र का बलि दे सके तो राजा के प्राणों की रक्षा हो सकती है।

स्त्री—देव, जिसका हम लोगों ने नमक खाया है यदि हम उसके काम न आये तो हमारे जीवन पर धिक्कार है। हमें बेटे का बलिदान कर देना चाहिए।

(४)

देवी का मंदिर। राजा छिपकर देख रहा है।

वीरवर—(बेटे का बलिदान करते हुए) ले देवी माता, हमारे स्वामी की रक्षा करना।

स्त्री—जय हो देवी माता की। मुझसे यह दृश्य नहीं देखा जाता। मैं भी अपने आपको बलिदान करती हूँ। (गिरकर मर जाती है)

वीरवर—जब पुत्र और स्त्री दोनों ही चल बसे तो मैं ही जीकर क्या करूँगा।

(तलवार से अपना सिर काट लेता है)

राजा—(प्रकट होकर) धन्य, वीरवर धन्य! देवी माता, जब मेरे कारण इन तीन प्राणियों ने अपने प्राणों की बलि दे दी तो मेरे जीवन को धिक्कार है।

(राजा अपना सिर काटने को तलवार उठाता है, देवी प्रकट होती है)

देवी—ठहरो राजा, यह तुम क्या करने चले हो?

राजा—माता, या तो तुम इन तीनों को फिर से ज़िला दो, वर्ना मेरी भी बलि लो।

देवी—नहीं, ऐसा न करो। मैं इन तीनों को जीवित किये देती हूँ। (अमृत छिड़ककर जिला देती है। तीनों राम राम कहते हुए उठते हैं।)

वीरवर—(राजा को देखकर) महाराज, आप यहाँ कैसे?

राजा—वीरवर, मैंने सारा दृश्य छिपकर देखा है। तुम्हारी स्वामिभक्ति धन्य है। मेरे कोई पुत्र नहीं है। अब तुम मेरे पुत्र बनकर रहोगे। कल राजसभा में तुम्हारा राजतिलक करूँगा।

(सब लोग प्रसन्न होकर जाते हैं)

———

मुद्रक—श्रीत्रिभुवननाथ धीर (राजा) रामकुमार-प्रेस, लखनऊ.